International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 09-07-2026; Accepted: 09-08-2026; Published: 24-08-2026
Volume 12, Issue 3, 2026, Page No. 111-113

समकालीन हिंदी कवितारू यथार्थ के नए आयाम, शिल्पगत विविधता और पत्रिकाओं का परिप्रेक्ष्य

डॉ. तरूण कुमार साहू
अतिथि प्राध्यापक शासकीय, राजीव लोचन स्नातकोत्तर महाविद्यालय राजिम, छत्तीसगढ़, भारत

सारांश
इक्कीसवीं शताब्दी को 'कथा का युग' कहा जा रहा है। उपन्यास और कहानी के वर्चस्व के बावजूद कविता ने अपना स्थान न केवल बचाए रखा है, अपितु प्रत्येक कालखंड में अपने शिल्प और विषयवस्तु में निरंतर परिवर्तन भी किया है। इक्कीसवीं शताब्दी में विशेषकर चार–पंक्तीय लघु कविताओं की लोकप्रियता बढ़ी है। वहीं कॉपी–पेस्ट और सोशल मीडिया के युग में मौलिकता का संकट भी गहराया है। इस आलेख का उद्देश्य यह विश्लेषित करना है कि समकालीन हिंदी कविता किस प्रकार दरबारी स्तुति से हटकर जन–जीवन, संघर्ष और यथार्थ के धरातल पर खड़ी हो रही है। साथ ही–हंस, वागर्थ, आलोचना, कथादेश, वनमाली कथा–जैसी पत्रिकाओं की भूमिका को रेखांकित करना है।

मूल शब्दः समकालीन हिंदी कविता, इक्कीसवीं शताब्दी, यथार्थबोध, शिल्प–परिवर्तन, लघु पत्रिका, जन–संघर्ष, कृषि संकट, मीडिया, सत्ता

साहित्य के प्रारंभ से लेकर वर्तमान तक कविता साहित्य की अनिवार्य विधा रही है। यद्यपि इक्कीसवीं सदी को दृश्य–श्रव्य माध्यमों और कथा साहित्य का काल कहा जा सकता है, तथापि कविता ने अपना अस्तित्व बनाए रखा है। इसका कारण यह है कि कविता समय के साथ निरंतर रूपांतरित होती रही है। आधुनिक उपभोक्ता संस्कृति में पाठक की समय–सीमा को ध्यान में रखते हुए लघु, संक्षिप्त और प्रभावी चार–पंक्तीय कविताएं अधिक लोकप्रिय हो रही हैं।

पारंपरिक रूप से कवि या तो दरबार का चारण था या सत्ता का गुणगान करने वाला। किंतु वर्तमान कवि का सरोकार दरबार से हटकर समाज और आमजन के जीवन से जुड़ गया है। वह अब सत्ता के गलियारों के बजाय खेत, बाजार, कारखाने और मोहल्ले में खड़ा होकर आम आदमी के संघर्ष, पीड़ा और यथार्थ का चित्रण कर रहा है। इस परिवर्तन के पीछे दो प्रमुख कारण हैं एक मंचीय कविता को अक्सर लोकप्रियता के कारण "कविता" का पर्याय मान लिया जाता है। जबकि पत्रिकाओं में प्रकाशित कविता जीवन के अधिक निकट है और वह पाठक को भावनात्मक गहराई के साथ पीड़ा सौंपती है।

वही कहानी को एक–दो बार पढ़ने पर अपना मूल स्पष्ट कर देती है, जबकि कविता प्रत्येक पाठ में नया अर्थ उद्घाटित करती है। इसी कारण कविता को पढ़ना और समझना अधिक श्रमसाध्य कार्य है।

समकालीन कविता को आकार देने में साहित्यिक पत्रिकाओं की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। हंस, वागर्थ, आलोचना, कथादेश, वनमाली कथा साहित्यिक पत्रिकाएं नए शिल्प और नए विषयों के साथ आने वाले कवियों को मंच प्रदान कर रही हैं। ये पत्रिकाएं कवियों की भाव–साधना को गंभीरता से लेती हैं और उन्हें पाठकीय समाज से जोड़ती हैं।

शोध आलेखः प्रेमशंकर शुक्ल की कविता प्रकृति के दैनिक बिम्बों के भीतर सामाजिक असमानता को देखती है। वनमाली कथा में प्रकाशित उनकी रचना में गेहूं की फसल किसान आंदोलन का रूपक बन जाती है।

"गेहूँ के उगने का समय है –हर रोज्ज की तरह सूरज पूरब से उगेगा
खुला आसमान रहेगा और दूर–दूर से पंडुक आएँगे
जिनके पास ज्यादा खेत है उन्हों का भरा पेट है
ये गेहूँ के उगने का समय है यह समय मौसम की फसल को सही–सही लिखित मूल्य मिलने का समय है" [1]

इस पंक्तियों में कवि प्रकृति की निरंतरता को मनुष्य की असमानता से टकराता है। सूरज का रोज उगना और पक्षियों का आना प्रकृति का स्वाभाविक क्रम है, किंतु उसी क्रम में खेत और पेट का संबंध भी उभर कर सामने आता है। यहां गेहूं केवल अनाज नहीं रह जाता, वह श्रम, मूल्य और अधिकार का प्रतीक बन जाता है। कवि संकेत करता है कि जब तक फसल को उसका उचित मूल्य नहीं मिलेगा, तब तक प्रकृति का चक्र भी अधूरा रहेगा।

विडंबना यह भी है कि जब प्राकृतिक आपदा आती है या फसल नष्ट हो जाती है, तो किसानों की आत्महत्या की खबरें समाचारों में सबसे अधिक आती हैं। किसानों को आज तक उनकी फसल का वास्तविक मूल्य नहीं मिला है, जबकि किसान द्वारा उगाए गए अन्न से ही सत्ता में बैठे नेताओं और आम जनता, दोनों का जीवन चलता है। किसान हमारे जीवन के लिए उतने ही आवश्यक हैं जितनी हमारे लिए वायु। किंतु उनके संरक्षण और संवर्धन के लिए सत्ता आगे नहीं आती।

भानु प्रकाश रघुवंशी की कविता भीड़ भारत वागर्थ में प्रकाशित हुई है। इसमें कवि वर्तमान समय में मीडिया और सत्ता के गठजोड़ तथा आम जनता की स्थिति का परीक्षण करता है।

"अंधेरा उजाले के आवरण में छुपा है आवरण तोड़ने से पहले कठिन है उसे चिह्नित करना
मीडिया किसी जिन्न की तरह पूछता है क्या हुकम है मेरे आका देश बदल रहा है का नारा बुलंद किया जा रहा है एक मजबूत अर्थव्यवस्था बनने की खुशी से गदगद हुए हम लोग भूखे पेट नंगे बदन
यह भीड़ भारत है मेरे दोस्त यहां आमजन के मुद्दे आपको" [2]

इन पंक्तियों में कवि सत्ता द्वारा निर्मित विमर्श और वास्तविक जीवन के बीच की खाई को दर्शाता है। मीडिया को जिन्न की संज्ञा देकर उसकी पराधीनता को व्यंग्य में बदल दिया गया है। एक ओर विकास और मजबूत अर्थव्यवस्था के बड़े–बड़े नारे हैं, तो दूसरी ओर भूख और नंगापन है। कवि भीड़ शब्द के माध्यम से यह बताता है कि जनसमूह को जन–मुद्दों से काटकर केवल नारों की भीड़ में बदल दिया गया है।

वास्तव में भारत के भीतर दो भारत हैं, इसमें कोई दो मत नहीं हैं। एक इंडिया है जो इक्कीसवीं शताब्दी की चमक–दमक के साथ मेट्रो की गति से चल रहा है। इसे वन्दे भारत भी कहा जा सकता है क्योंकि इंडिया शब्द से सत्ता के बड़े नेता दूर रहते हैं। दूसरा भारत है जो गांवों में बैलगाड़ी पर सवार होकर एक गांव से दूसरे गांव हिचकोले खाता फिर रहा है, जहां आज भी अंधकार का साम्राज्य है।

अशोक कुमार की कविता अफवाह समकालीन समय में व्यक्ति की आंतरिक घुटन और प्रश्न करने के भय को दर्ज करती है।

"एक अफवाह है जिसे वर्तमान की पीढ़ी ने भविष्य का सत्य मान लिया है
एक विलंबित न्याय है जिसकी आंखों पर चस्पां हैं आस्था के इश्तिहार
एक सीधा सा प्रश्न है जो मात्र पूछे जाने भर से अपराध में बदल गया है
एक उबाऊ थकान है जो प्रतीक्षा की लंबी सड़क पर सभ्यता के पैरों पे आ टिकी है" [3]

यहां कवि उस सामाजिक मनोदशा को पकड़ता है जहां सत्य और अफवाह में अंतर मिट गया है। न्याय में देरी और आस्था के पोस्टर एक साथ रखकर संस्थाओं पर से विश्वास के हटने को दिखाया गया है। सबसे महत्वपूर्ण बात प्रश्न का अपराधीकरण है। प्रतीक्षा करते–करते आई थकान सभ्यता की प्रगति पर ही प्रश्नचिह्न लगा देती है।

मोतीलाल दास की कविता अब वे उपभोक्तावादी समय में परिवार और पीढ़ियों के बीच बढ़ती दूरी को अत्यंत सूक्ष्मता से रेखांकित करती है।

"अब बेटे के पांव इतने बड़े हो गए हैं कि पिता के जूते काटते हैं उन्हें
और बिटिया के आंचल इतने लहराते हैं कि मां की ममता तंग करती है उन्हें
इधर सही दिशा में उड़ते प्रवासी पक्षी कब रास्ता बदल दें
ऐसे में वे कविता में उतरने के बजाए सेंसेक्स में उछलते डूबते हैं" [4]

इन पंक्तियों में घर के भीतर हो रहे संरचनात्मक बदलाव का अत्यंत मार्मिक चित्रण है। पिता के जूते काटना यह दर्शाता है कि नई पीढ़ी अब पिता के अनुभव, आदर्श और जीवन–मूल्यों में समाना नहीं चाहती। वह अपने लिए नया मार्ग, नई पहचान और नए मापदंड गढ़ रही है। इसी प्रकार मां की ममता का तंग करना इस बात का प्रतीक है कि बेटी अब परंपरागत सुरक्षा और दुलार को बंधन के रूप में देख रही है। वह अपनी उड़ान के लिए स्वतंत्र आकाश चाहती है।
सही दिशा में उड़ते प्रवासी पक्षी का रास्ता बदलना यहां एक महत्वपूर्ण बिम्ब है। प्रवासी पक्षी परंपरा, संस्कार और सामूहिक स्मृति का प्रतीक है। उसका दिशा भ्रमित होना यह बताता है कि बाजार और उपभोक्तावाद ने पीढ़ियों को उनकी सांस्कृतिक जड़ों से काट दिया है।
कविता की अंतिम पंक्ति सबसे तीखी है। जब पूरा समाज सेंसेक्स में उछलता–डूबता है, तब संवेदना, कला और आत्मीयता के लिए स्थान कहां बचता है। यहां कविता में उतरने का अर्थ है रुककर सोचना, महसूस करना और जीवन की बारीकियों को समझना। किंतु बाजार ने समय को इतना तेज और प्रतिस्पर्धी बना दिया है कि मनुष्य के पास अब न कविता के लिए समय है, न हंसी के लिए, न मिट्टी की खुशबू को पहचानने के लिए। इस प्रकार दास यह प्रश्न उठाते हैं कि आर्थिक समृद्धि की दौड़ में हमने मानवीय संबंधों और सांस्कृतिक मूल्यों को कितना पीछे छोड़ दिया है।
मृदुला गर्ग की कविता देह कैसे होती है सर्वोपरि देह और मन की पीड़ा के प्रति समाज के दोहरे व्यवहार पर टिप्पणी करती है।

"देह का अंग विकल होता नहीं कि आत्मा प्रज्ञा से पाई ताकत लगाते शरीर को अनुताप विरत करने में
पर क्यों नहीं कर पाते गर्व मन पर खाई असहनीय चोट को सह जाने पर
स्त्री की देह भी यूं होती सर्वोपरि न वह दिखलाती न कोई देखता उसका छलनी सा बिंधा उघड़ा मन
हम मुस्करा कर ही नहीं रह जाते अट्टहास करते हैं" [5]

कवयित्री बताती हैं कि शारीरिक पीड़ा पर समाज तुरंत उपचार और सहानुभूति देता है, किंतु मानसिक आघात को छिपाने की सलाह देता है। स्त्री के संदर्भ में यह द्वंद्व और गहरा हो जाता है। उसका मन यदि उघड़ जाए तो उसे लज्जा का विषय माना जाता है। इसलिए लोग अट्टहास के पीछे अपना दुख छिपाते हैं।

राजेन्द्र राजन की कविता यह ऐसा निज़ाम है वर्तमान सत्ता व्यवस्था के चरित्र और भाषा के दुरुपयोग को उजागर करती है।

"लोकतंत्र के मलबे पर खड़ा यह नया निज़ाम है जिसने सच और झूठ के फर्क को मिटा दिया है
तुम्हारी राह में कांटे बिछाकर कहा जा रहा है कि तुम्हारी राह पहले से आसान हो गई है
बिगाड़ को वे कह रहे हैं सुधार दुर्दिन को कह रहे हैं अच्छे दिन
यह ऐसा निज़ाम है जो गरीबों पर रोज गुर्राता है मगर थैलीशाहों के आगे दुम हिलाता है" [6]

यहां कवि सत्ता द्वारा भाषा के हेरफेर को पकड़ता है। कठिनाई को सुविधा और संकट को अच्छे दिन कहा जा रहा है। निज़ाम शब्द दोहराकर कवि यह स्पष्ट करता है कि यह व्यवस्था वर्गीय है। एक ओर गरीबों पर दबाव है, दूसरी ओर पूंजीपतियों के प्रति समर्पण है। कविता अंत में प्रतिरोध की आवश्यकता को रेखांकित करती है।

अनुपम सिंह की कविता 'इच्छा'स्त्री को पुरुष कल्पना, मिथक और आदर्श के आवरण से निकालकर एक स्वतंत्र, सांसारिक व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत करती है।

"मेरे कवि की हज़ार कल्पनाओं के बाद भी मेरी स्त्री की कुछ ठोस इच्छाएँ हैं
नित आकाश में विचरण के बाद भी उसे चाहिए ज़मीन पर एक कच्चा घर
बिल्ली अपने बच्चे को जिस सावधानी से मुँह में दबाए रखती है उसे देख जुड़वाँ बच्चों की माँ बनना चाहती है मेरी स्त्री
बस कोई न पूछे बच्चे के पिता का नाम" [7]

इन पंक्तियों में स्त्री की इच्छाएं किसी काव्यात्मक उड़ान या दार्शनिक अमूर्तता की नहीं हैं। वे ठोस, भौतिक और दैनंदिन जीवन से जुड़ी हैं। "ज़मीन पर एक कच्चा घर" की मांग सुरक्षा, स्वायत्तता और आत्मीय स्थान की आकांक्षा है। "जुड़वां बच्चों की मां बनना" मातृत्व की इच्छा है, लेकिन वह भी बिल्ली के उदाहरण से दृ यानी बिना किसी सामाजिक नैतिकता के दबाव के, सहज और प्राकृतिक रूप में।

कविता की अंतिम पंक्ति "बस कोई न पूछे बच्चे के पिता का नाम" समूची पितृसत्तात्मक व्यवस्था पर सबसे सीधा प्रहार है। यहां स्त्री विवाह, गोत्र, कुल और "वैधता" के प्रश्नों से मुक्त होकर केवल एक मनुष्य के रूप में जीना चाहती है। सिंह यह स्पष्ट करते हैं कि स्त्री को देवी, त्यागमयी या आदर्श नहीं चाहिए। उसे सामान्य नागरिक के अधिकार, इच्छा और गोपनीयता चाहिए।

निष्कर्ष

इक्कीसवीं शताब्दी की हिंदी कविता अपने पूर्ववर्ती रूपों से भिन्न एक नए सरोकार के साथ हमारे सामने उपस्थित होती है। कथा के वर्चस्व वाले इस काल में भी कविता ने अपना स्थान बनाए रखा है, क्योंकि वह समय के साथ निरंतर रूपांतरित होती रही है। चार–पंक्तीय लघुता से लेकर बहुस्तरीय यथार्थ तक, कविता ने पाठक की बदलती संवेदना से संवाद स्थापित किया है।

इस शताब्दी के कवि अब दरबार या सत्ता–केंद्रित आख्यानों से हटकर समाज के बीच खड़े दिखाई देते हैं। प्रेमशंकर शुक्ल के यहां गेहूं की फसल किसान के अधिकार का प्रश्न बनती है, भानु प्रकाश रघुवंशी मीडिया–सत्ता के गठजोड़ को उघाड़ते हैं, तो अशोक कुमार प्रश्न करने के भय को दर्ज करते हैं। मोतीलाल दास बाजार के दबाव में पारिवारिक संबंधों के बदलते ताने–बाने को देखते हैं। मृदुला गर्ग देह और मन की पीड़ा के दोहरे मानदंड पर प्रश्न उठाती हैं। राजेन्द्र राजन सत्ता की भाषा और नीतियों की आलोचना करते हैं, जबकि अनुपम सिंह स्त्री की स्वायत्त इच्छाओं को केंद्र में लाते हैं।

इस पूरे परिदृश्य में –हंस, वागर्थ, आलोचना, कथादेश, वनमाली कथा– जैसी लघु पत्रिकाओं की भूमिका महत्वपूर्ण प्रतीत होती है। ये पत्रिकाएं मंचीय लोकप्रियता के शोर से अलग हटकर कविता को जीवन–यथार्थ के अधिक निकट ले जाती हैं। यहां प्रकाशित कविता पाठक से सीधे संवाद करती है और उसे जीवन की जटिलताओं के साथ छोड़ देती है।

अंततः कहा जा सकता है कि समकालीन हिंदी कविता एक बंद अर्थ वाली विधा नहीं रही। वह प्रत्येक पाठ में नए अर्थों के लिए खुली है। वह संघर्ष, असुरक्षा, बाजार, सत्ता और निजता जैसे विविध आयामों को एक साथ बुनते हुए इक्कीसवीं सदी के भारत का एक बहुस्तरीय मानचित्र प्रस्तुत करती है। इस मानचित्र को समझने के लिए कविता को केवल पढ़ना ही पर्याप्त नहीं, उसे बार–बार पढ़ना और उसके भीतर उतरना आवश्यक प्रतीत होता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शुक्ल, प्रेमशंकर. गेहूँ के उगने का समय. वनमाली कथा, जून अंक, 2023, पृ. 19.
2. प्रकाश. भानु. भीड़ भारत. वागर्थ. अंक जुलाई 2023. पृ. 54
3. कुमार अशोक. अफवाह. आलोचना त्रैमासिक अंक 71. अक्टूबर 2022. पृ.11.
4. मोतीलाल. अब वे. वागर्थ.अकं अगस्त 2023. पृ. 62.
5. गर्ग मृदुला. देह. हंस. अंक जनवरी 2021. पृ.18
6. राजन राजेन्द्र .ऐसा निज़ाम है. हंस.जनवरी 2821. पृ.18
7. सिंह अनुपम. इच्छा. आलोचना त्रैमासिक. 2025.पृ. 49.